शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

लोक मंगलकारी भक्ति का शास्त्रीय स्वरूप

डॉ. सुरेश चतुर्वेदी
शासकीय स्नातकोत्तर कॉलेज
धार, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मनुष्य जीवन का अनुभव यह बताता है कि संसार के भोग पदार्थ और सुख सुविधाएँ मनुष्य को स्थायी सुख शांति नहीं दे सकतीं। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह कितना भी सम्पन्न और समृद्ध क्यों न हो कभी न कभी जीवन में ऐसे अभाव का अनुभव करता है जिसकी पूर्ति सांसारिक उपायों से नहीं की जा सकती। यह अभाव उसके जीवन को अर्थहीन बना देता है। सारी उपलब्धियाँ उसे मूल्यहीन और व्यर्थ प्रतीत होने लगती हैं। इस व्यर्थता के बोध सेमन में ऐसी अशांति का जन्म होता है, जो मनुष्य के मन को भीतर से मथता रहता है। यह अशांति अहर्निष बनी रहती है और गीता की इस चेतावनी से सभी परिचित हैं 'अशांतस्य कुतः सुखम्'।इस अशांति एवं उससे उत्पन्न दुःख से छूटने का एकमात्र उपाय है आध्यात्मिक साधना। उस साधना के भी कई मार्ग है जैसे ज्ञानयोग, राजयोग आदि। किंतु इन मार्गो पर चलने वाले अधिकारी पुरुष होते हैं जो कठिन साधना के द्वारा इस मार्ग पर चलकर अपने दुःखों की निवृत्ति कर लेते हैं। ज्ञान पंथ कृपान कै धारा।। तब जो लोग विशेष अधिकारी नहीं हैं साधारण व्यक्ति हैं, क्या उनके लिए कोई मार्ग नहीं है ? क्या उन्हें कोई आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं हो सकती ? उनके लिए भी मार्ग है। उन्हें भी आध्यात्मिक अनुभूति हो सकती है। इसी सरल मार्ग का नाम भक्ति योग है। भक्ति आध्यात्मिक जगत का राजमार्ग है जो सभी के लिए खुला है। 'भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। प्रस्तुत शोध पत्र में लोकमंगलकारी भक्ति के शस्त्रीय स्वरूप पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

भक्ति शब्द तीन प्रकार से निष्पन्न होता है। 'भजनं भक्तिः', 'भागो भक्तिः' 'भंजनं भक्तिः।' 'भजनं भक्तिः' में भक्त भगवान के गुणों व उनकी लीलाओं का बार बार स्मरण कर रसास्वादन करता है। 'गोपालतापनीयोपनिषद' में उल्लेख है कि 'नाम, भजनं नाम रसनम्' नाम भजन ही भक्ति की उपलब्धि है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी संदर्भ में यह चैपाई लिखी 'रामहिं सुमरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय राम गुन ग्रामहिं।। (राम चरित मानस उ. का.)। 'भागो भक्ति' से भक्त अपने को भगवान का भाग (अंश) बना देता है। अपनी पृथक और भव से विभक्त स्थिति में रहता है। भगवान के भाग में चले जाना-यही उसका वैशिष्ट्य है। भक्त जागतिक अस्तित्व का निषेध करता है। 'भंजन भक्ति' श्रीमद्भागवतम् के अनुसार भगवान में अखण्ड अविच्छिन्न रूपेण भगवान के गुणों का श्रवण, कीर्तन, मनन, और निदिध्यासनादि के द्वारा इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार आदि को सतत् भक्ति भागीरथी में सतत् प्रवाहमान रखता है। भक्त संसार के माया जाल व अविद्या का भंजन करता है यह भंजन भक्ति है।

भक्त का चित्त तैल धारावत सतत् समान भाव से भगवान की भक्ति में लीन रहता है।[1]

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेन च। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भक्ति रसायन के अनुसार :

द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता। सर्वेषे मनसों वृतिर्भक्तिरित्यभिधीयते।[1]

भगवान के गुण माहात्म्य, कृपा का स्मरण कर चित्त द्रवीभूत हो जाय और अखण्ड धारा प्रवाह में मन की वृत्तियां भगवान में ही रहें, उसी को भक्ति कहते हैं। समस्त दर्शनों में भक्ति तत्त्व व्याप्त है। वैशेषिक महेश्वर की भक्ति, गौतम शिव की भक्ति और सांख्य मतावलम्बी भगवान कपिलदेव को पूजते है। यहां तक कि चार्वाक जैसा नास्तिक भी आचार्य वृहस्पति में श्रद्धा भक्ति रखते हैं चाहे वे सिद्धान्ततः भक्ति रहित भले ही रहे हों। बौद्ध और जैन मतावलंबी भी बुद्ध और तीर्थकर की भक्ति करते हैं।

परिभाषाएं

आचार्यों ने भक्ति की विभिन्न परिभाषाओं की व्याख्या की है, पर उन सभी में मूलतः कोई वैमत्य या भेद नहीं।

हिंदी विश्व कोश (नागेन्द्र नाथ वसु) में भक्ति की सुन्दर परिभाषा प्राप्त होती है - भज्यते इति क्तिन' और उसके सोलह पर्याय दिये हैं, जिनमें विभाग, सेवा पूजा-अर्चना श्रद्धा अनुराग आदि है। जैन मतानुसार भक्ति वह ज्ञान है जिसमें निरतिशय आनन्द हो और जो सर्व प्रिय अनन्य प्रयोजन विशिष्ट हों।

वर्तमान में भक्ति दर्शन संबंधी पांच सूत्र ग्रंथ पाये जाते हैं 1 नारद भक्ति सूत्र, 2 शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, 3 आङ्गिरस भक्ति सूत्र, 4 भक्ति मीमांसा, 5 भक्ति सूत्र हरिहरानंद अख्यकृत (भक्ति तत्त्व पृष्ठ 72) यहाँ हम कुछ ग्रंथों का ही स्पर्श करेंगे।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार - 'सा परानुरक्तिरीश्वरे'।[3] इनके अनुसार समस्त विषय प्रपंचों से मन हटकर एकमात्र श्री हरि में मन लवलीन रहता है और भक्त को भगवत् चिन्तन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं भाता। उस अनन्य प्रेमानुरक्ति का नाम भक्ति है और भगवान में चित्त की एकाग्रता समग्रता से जीव अमृतत्व की उपलब्धि करता है। 'तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्।[4] भाष्यकार स्वप्नेश्वर ने अनुरक्ति शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है 'भगवन्महिमादिज्ञानादनु

पश्चाज्जायमानत्वानुरक्तिरित्युक्तम् 1-2 [5] 'अन' पश्चात् 'रक्ति' आसक्ति, अर्थात् भगवान के स्वरूप व महिमा के ज्ञान के पश्चात् उत्पन्न होने वाली भगवत् प्रेमरूपा स्थिति।

नारद भक्ति सूत्र में नारद ने भक्ति को परम प्रेम रूपा कहकर उसे अमृतोपम माना है। भक्तिमान पुरुष सिद्ध होता है और इसकी प्राप्ति हो जाने पर अन्य कोई अभिलाषा शेष नहीं रहती। भक्ति की उपलब्धि हो जाने पर भक्त आत्म रूप हो जाता है। सात्विस्मिन परम प्रेमरूपा।[6] अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्[7] मूकास्वादनवत्[8] 'यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।[9] नारद भक्ति को परम प्रेम रूपा और अमृत तुल्य कहते हैं। भक्ति से पुरुष सिद्ध हो जाता है और इसकी प्राप्ति हो जाने पर अन्य कोई अभिलाषा नहीं रहती। अर्थात् पराभक्ति को प्राप्त कर भक्त जीवन मुक्ति का भी सुख भोग करता है। 'आत्मारामो भवति' भक्ति प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। संसार के साधारण लोग अपने आराम के लिए धन, मान, स्त्री, पुत्र, पद आदि पर निर्भर रहते हैं। आराम के लिए उन्हें बाहरी वस्तुओं की आवश्यकता होती है, किंतु भक्त आराम के लिए कभी भी बाहर की वस्तु पर निर्भर नहीं होता। उसका आराम उसकी अन्तरात्मा में, अपने हृदय

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

में विराजमान परमात्मा में ही होता है, इसलिए भक्त आत्माराम होता है।

अब प्रश्न है कि हम उस आत्मारामत्व की जनक भक्ति की प्राप्ति कैसे करें ? उसकी विधि क्या है ? इसका उत्तर नारद पांचरात्र में मिलता है -

अनन्य ममता विष्णौ, ममता प्रेम संगता। भक्ति रित्युच्यते भीष्म प्रहलादोद्धव नारदैः।।नारद पांचरात्र।

भीष्म प्रहलाद, और नारद के शादृष्यपूर्ण अनन्य ममता व प्रियत्व यदि भगवान में हो तो उसे भक्ति कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार भी भक्ति पूर्ण प्रेममय है -

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेषी हृषीकेषं सेवनं भक्ति रुच्यते।।

समस्त उपलब्धियों से मुक्त होकर, भगवान की निर्मल मन से सेवा करना व समस्त साधनों को उन्हें अर्पित करना ही भक्ति है।

भक्ति रसामृतसिंधुकार भक्ति की परिभाषा इस प्रकार देते हैं -

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुषीलनं भक्ति रुत्तमा।।[10]

चित्त में भगवान के प्रेम के अतिरिक्त दूसरी कोई कामना - अभिलाषा न हो साथ ही ज्ञान व कर्म से भक्ति आवृत्त न हो।भक्ति की यह परिभाषा ज्ञान और कर्म को स्वीकार नहीं करती।

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेमपरिप्लुता। अभिसंधि विनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुषंकरी।।[11]

नारद पांचरात्र के अनुसार मन का सतत प्रवाह प्रेम से परिप्लुत होकर भगवान के प्रति निःस्वार्थ भाव से अभिमुख होना ही भक्ति है। इसी से भगवान आकृष्ट होते हैं।

या प्रीतिरविवेकानाम्, विषयेस्वनपायिनी।त्वामनुस्मरतत्सा मे हृदयान्मापासर्पतु।।[12]

श्री आद्यषंकराचार्य ने विवेक चूणामणि में भक्ति की व्याख्या यह कहकर की है -

स्वस्वरूपानुसंधानं, भक्तिरित्यभिधीयते।स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे जगुः।।[13]

आत्मा के स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है। वह निरंतर स्वात्मानुसंधान की प्रक्रिया है।

यामुनाचार्य कहते हैं-

दर्शनम परभक्तिः स्यात् परज्ञानं तु संगमः।पुनर्विष्लेष भीरुत्वं परमा भक्तिरुच्यते।।

दर्शन परा भक्ति है, एकात्म होना पर ज्ञान, एवं एकात्म की सतत अभीप्सा ही परम भक्ति है।

श्रीमद्भागवतम् में भक्ति का सुन्दर और सरल लक्षण बताया गया है -

मद्गुणश्रुतिमात्रेण , मयि सर्व गुहाषये।मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोम्बुधौ।

लक्षणं भक्तियोगस्य, निर्गुस्य हृयुदाहृतम। अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।।[14]

श्री भगवान कहते हैं सागर में स्वतः प्रवाहित गंगा के जल की धारा के समान जो मनोगति मेरे गुण श्रवण मात्र से फलानुसंधान रहित तथा भेद दर्शनविहीन होकर सर्वान्तर्यामी मुझ पुरुषोत्तम में अविच्छिन्न भाव से निहित होती है, यही गुणातीत भक्तियोग है।

मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसमें भगवान श्री कृष्ण में भक्ति हो और वह कामना रहित निरंतर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनंद स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करता है, क्योंकि 'हरिस्मृति' सर्व विपद्विमोक्षणम्'।

श्री वल्लभाचार्य ने भक्ति के विषय में कहा है -

माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु,सुदृढः सर्वताधिकः।स्नेहोभक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा।।[15]

भगवान का ज्ञान माहात्म्य पूर्वक होना व उसमें सर्वाधिक और दृढ़ स्नेह होना ही भक्ति है। भगवान में पूर्ण चेतना के साथ अपूर्व प्रेम और प्रभु का गौरव बोध ही भक्ति है। इस प्रकार की भक्ति से दिव्य प्रेम निरंतर गतिमान रहता है।

गर्गाचार्य के मतानुसार भगवत कथादिक में जो अनुराग है वही भक्ति है। इसी में गाढ़ानिवेश श्रद्धा को ही भक्ति कहते हैं।

हरि भक्ति विलास में भक्ति के विषय में लिखा है- जिनके कारण शब्द, रूप , रस, प्रभृति का बोध होता है एवं सत्यमूर्ति हरि के प्रति इन सबका जो स्वाभाविक स्फुरण है वही भक्ति है।

आद्यषंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि और षिवान्द्र लहरी में बताया है कि स्वरूपानुसंधान के लिए नैरन्तर्य विवेक, भय, दयादि आवष्यक है और भक्ति तब होती है जब इष्ट के श्री चरणों में अविराम मन लगा रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे चुम्बक और लौह का संस्पर्ष सदैव एक दूसरे को जोड़े रहता है। श्री रामानुजाचार्य ने श्री भाष्य 1.1.1 में भक्ति को दिव्य प्रेम की संज्ञा दी है।

जयतीर्थ न्यायतीर्थ न्यायसुधा में कहते हैं-

"तत्रभक्तिर्नाम निरवधिकानन्ता-नवद्यकल्याण गुणत्व ज्ञानपूर्वकः स्वस्वात्मात्मीय समस्तवस्तुभ्यो अनेक गुणाधिकोन्तराय सहस्त्रेणाप्यप्रतिबद्धो निरन्तर प्रेमप्रवाहः" भक्ति प्रेम का अखण्ड, अनवरत प्रवाह है, जिसका आधार है कि ईष्वर ही सर्वभावेन, सर्वसत्तावान, सर्वव्यापी और सर्व प्रभुत्व है। यामुनाचार्य के मत में पराभक्ति ईष्वर की दिव्यता का प्रतिपादन है और पराज्ञान उससे एकात्म का।

कपिल ने भक्ति को परमेश्वर की ओर होने वाला सतत प्रवाह कहा है, क्योंकि वही सर्वेश्वर सर्वभूतात्मा में अधिष्ठित है। श्री रामानन्दाचार्य ने भक्ति को 'सा तैलधारा संन्नित्य संस्मृति सन्तान रूपेति परानुरक्ति' कहा है। अर्थात् भक्ति (परानुरक्ति) तैलधारा सदृश्य अनवरत और अखण्ड होती है।

अवस्था भेद से भक्ति के दो भेद हैं - परा भक्ति और गौड़ी भक्ति। स्वेच्छा से की गई भक्ति गौड़ी है और ईश्वरानुग्रह से जब स्वतः ही साधक का मन भगवत् प्रेम में मग्न रहता है तब पराभक्ति होती है।

इन समस्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि भक्ति भगवान के प्रति अखण्ड और अव्याहत प्रेम है और वह अमृत तुल्य है। भक्ति और भगवान का सम्बन्ध इसी परिपूर्ण प्रेम में ही सम्भव है। भक्त भगवान के अतिरिक्त और किसी की भी अभिलाषा नहीं रखता। महर्षि नारद के अनुसार भक्ति के उदय के दो मुख्य कारण हैं-संतों की कृपा और भगवदनुग्रह- मुख्यतस्तु भगवत्कृपयैव भगवत्कृपालेषाद्वा।'[16]

वे समस्त साधन धन्य हैं, आचरणीय हैं जिनसे विषयासक्ति छूटती है और भगवदासक्ति दृढ़ होती है। प्रभु को ही अपना एक मात्र लक्ष्य बनाकर दृढ़ संकल्प कर हमें भक्ति में जुट जाना चाहिए। जो हमें गुरू संत या परंपरा से प्राप्त हुआ हो। हमारे हाथ में तो अपना साधन ही है। उसी की पराकाष्ठा होने पर, उसी के दूसरे छोर पर हमें प्रभु की प्राप्ति होगी।

पराभक्ति प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध हो जाता है। यहाँ सिद्धि से तात्पर्य है भक्त का हृदय पूर्णतः वासना रहित हो जाता है, उसमें सांसारिकता की गंध भी नहीं रह जाती। उसका हृदय भगवत प्रेम से लबालब भर जाता है। इस परम प्रेम के परिणाम स्वरूप भक्त को इष्ट के दर्शन होते हैं। इष्ट का दर्शन कर वह इष्टमय हो जाता है। भक्ति योग में यही सिद्धि है। यही चरम आध्यात्मिक उपलब्धि है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 भागवत/03/25/32, एवं 3/29/11,12
2 भक्ति रसायन 1.3
3 शाण्डिल्य भक्ति सूत्र 2
4 गोपाल तापनीयोपनिषद-2 .1
5 गोपाल तापनीयोपनिषद-1-2
6 नारद भक्ति सूत्र 2
7 नारद भक्ति सूत्र 51
8 नारद भक्ति सूत्र 52
9 नारद भक्ति सूत्र 4
10 भक्ति रसामृत सिंधु-1/11
11 नारद पांचरात्र
12 विष्णुपुराण1.20.19
13 विवेक चूड़ामणि 2
14 भा. 3/29/11-12
15 शास्त्रार्थ प्रकरण 5/127
16 नारद भक्ति सूत्र 38